एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 04, अंक: 06 (नवंबर-दिसंबर, 2024)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

पपीते के रोग एवं उनकी रोकथाम

(*सुरभि पृथ्यानी)
विद्यावाचस्पति, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर
*संवादी लेखक का ईमेल पता: surbhiprithiani95@gmail.com

पपीते का वलय-चित्ती

पपीते के वलय-चित्ती रोग को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे कि पपीते की मोजेक, विकृति मोजेक, वलय-चित्ती (पपाया रिंग स्पॉट) पत्तियों का संकरा व पतला होना, पर्ण कुंचन तथा विकृति पर्ण आदि। पौधों में यह रोग उसकी किसी भी अवस्था पर लग सकता है, परन्तु एक वर्ष पुराने पौधे पर रोग लगने की अधिक संभावना रहती है। रोग के लक्षण सबसे ऊपर की मुलायम पत्तियों पर दिखायी देते हैं। रोगी पत्तियाँ चितकबरी एवं आकार में छोटी हो जाती हैं। पत्तियों की सतह खुरदरी होती है तथा इन पर गहरे हरे रंग के फफोले से बन जाते हैं। पर्णवृत छोटा हो जाता है तथा पेड़ के ऊपर की पत्तियाँ खड़ी होती हैं। पत्तियों का आकार अक्सर प्रतान (टेन्ड्रिल) के अनुरूप हो जाता है। पौधों में नयी निकलने वाली पत्तियों पर पीला मोजेक तथा गहरे हरे रंग के क्षेत्र बनते हैं। ऐसी पतियाँ नीचे की तरफ ऐंठ जाती हैं तथा उनका आकार धागे के समान हो जाता है। पर्णवृत एवं तनों पर गहरे रंग के धब्बे और लम्बी धारियाँ दिखायी देती हैं। फलों पर गोल जलीय धब्बे बनते हैं। ये धब्बे फल पकने के समय भूरे रंग के हो जाते है। इन रोग के कारण रोगी पौधों में लैटेक्स तथा शर्करा की मात्रा स्वस्थ्य पौधों की अपेक्षा काफी कम हो जाती है ।

रोग के कारण: यह रोग एक विषाणु द्वारा होता है जिसे पपीते का वलय चित्ती विषाणु कहते हैं। यह विषाणु पपीते के पौधों तथा अन्य पौधों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोगी पौधों से स्वस्थ्य पौधों पर विषाणु का संचरण रोगवाहक कीटों द्वारा होता है जिनमें से ऐफिस गोसिपाई और माइजस पर्सिकी रोगवाहक का काम करती है। इसके अलावा रोग का फैलाव, अमरबेल तथा पक्षियों द्वारा होता है ।

पर्ण-कुंचन

पर्ण-कुंचन (लीफ कर्ल) रोग के लक्षण केवल पत्तियों पर दिखायी पड़ते हैं। रोगी पत्तियाँ छोटी एवं क्षुर्रीदार हो जाती हैं। पत्तियों का विकृत होना एवं इनकी शिराओं का रंग पीला पड़ जाना रोग के सामान्य लक्षण हैं। रोगी पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं और फलस्वरूप ये उल्टे प्याले के अनुरूप दिखायी पड़ती हैं। यह पर्ण कुंचन रोग का विशेष लक्षण है। पतियाँ मोटी, भंगुर और ऊपरी सतह पर अतिवृद्धि के कारण खुरदरी हो जाती हैं। रोगी पौधों में फूल कम आते हैं। रोग की तीव्रता में पतियाँ गिर जाती हैं और पौधे की बढ़वार रूक जाती है।

रोग के कारण: यह रोग पपीता पर्ण कुंचन विषाणु के कारण होता है। पपीते के पेड़ स्वभावतः बहुवर्षी होते हैं, अतः इस रोग के विषाणु इन पर सरलता पूर्वक उत्तरजीवी बने रहते हैं। बगीचों में इस रोग का फैलाव रोगवाहक सफेद मक्खी बेमिसिया टैबेकाई के द्वारा होता है। यह मक्खी रोगी पत्तियों से रस-शोषण करते समय विषाणुओं को भी प्राप्त कर लेती है और स्वस्थ्य पत्तियों से रस-शोषण करते समय उनमें विषाणुओं को संचरित कर देती है।

मंद मोजेक

इस रोग का विशिष्ट लक्षण पत्तियों का हरित कर्बुरण है, जिसमें पतियाँ विकृत वलय चित्ती रोग की भांति विकृत नहीं होती है। इस रोग के शेष लक्षण पपीते के वलय चित्ती रोग के लक्षण से काफी मिलते जुलते हैं। यह रोग पपीता मोजेक विषाणु द्वारा होता है। यह विषाणु रस-संचरणशील है। यह विषाणु भी विकृति वलय चित्ती विषाणु की भांति ही पेड़ तथा अन्य परपोषियों पर उत्तरजीवी बना रहता है । रोग का फैलाव रोगवाहक कीट माहूं द्वारा होता है।

रोग प्रबंध: विषाणु जनित रोगों की रोग प्रबंध संबधित समुचित जानकारी अभी तक ज्ञात नहीं हो पायी है। अतः निम्नलिखित उपायों को अपनाकर रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है:

- बागों की सफाई रखनी चाहिए तथा रोगी पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए ।
- नये बाग लगाने के लिए स्वस्थ्य तथा रोगरहित पौधे को चुनना चाहिए।
- रोगग्रस्त पौधे किसी भी उपचार से स्वस्थ्य नहीं हो सकते हैं। अतः इनको उखाड़कर जला देना चाहिए, अन्यथा ये विषाणु का एक स्थायी स्रोत हमेशा ही बने रहते हैं और साथ-साथ अन्य पौधों पर रोग का प्रसार भी होता रहता है।
- रोगवाहक कीटों की रोकथाम के लिए कीटनाशी दवा ऑक्सीमेथिल ओ. डिमेटान (मेटासिस्टॉक्स) 0.2 प्रतिशत घोल 10-12 दिन के अंतर पर छिड़काव करना चाहिए ।

तना या पाद विगलन

पपीते के इस रोग के सर्वप्रथम लक्षण भूमि सतह के पास के पौधे के तने पर जलीय दाग या चकते के रूप में प्रकट होते हैं। अनुकूल मौसम में ये जलीय दाग (चकते) आकार में बढ़कर तने के चारों ओर मेखला सी बना देते हैं। रोगी पौधे के ऊपर की पत्तियाँ मुरझा जाती हैं तथा उनका रंग पीला पड़ जाता है और ऐसी पत्तियाँ समय से पूर्व ही मर कर गिर जाती हैं। रोगी पौधों में फल नहीं लगते हैं यदि भाग्यवश फल बन भी गये तो पकने से पहले ही गिर जाते हैं। तने का रोगी स्थान कमजोर पड़ जाने के कारण पूरा पेड़ आधार से ही टूटकर गिर जाता है और ऐसे पौधों की अंत में मृत्यु हो जाती है। तना विगलन सामान्यतः दो से तीन वर्ष के पुराने पेड़ों में अधिक होता है। नये पौधे भी इस रोग से ग्रस्त होकर मर जाते हैं। पपीते की पौधशाला में आर्द्रपतन (डेपिंग ऑफ) के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रोग के कारण: यह रोग पिथियम की अनेक जातियों द्वारा होते हैं जिनमें से पिथियम अफेनीडमेंटम तथा पिथियम डिबेरीएनम मुख्य है। इसके अलावा अन्य कवक राइजोक्टोनिया सोलेनाई भी यह रोग पैदा करते हैं। ये सभी कवक मुख्य रूप से मिट्टी में ही पाये जाते हैं।

रोग प्रबंध

- पपीते के बगीचों में जल-निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए जिससे बगीचे में पानी अधिक समय तक न रूका रहे ।
- रोगी पौधों को शीघ्र ही जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहिए। ऐसा करने से रोग के प्रसार में कमी आती है । इसलिए जहाँ से पौधे उखाड़े गये हों, उसी स्थान पर दूसरी पौध कदापि न लगाएं।
- आधार से 60 सें.मी. की ऊँचाई तक तनों पर बोडों पेस्ट (1:13) लगा देना चाहिए।
- भूमि सतह के पास तने के चारों तरफ बोडों मिश्रण (6:6:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), टाप्सीन-एम (0.1 प्रतिशत), का छिड़्काव कम से कम तीन बार जून-जुलाई और अगस्त के मास में करना श्रेष्ठ रहता है ।

आर्द्रपतन रोग रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना चाहिए

- पौधशाला की क्यारी भूमि सतह से कुछ ऊपर उठी हुई होनी चाहिए। मृदा हल्की बलुई वाली होनी चाहिए। यदि मृदा कुछ भारी हो तो उसमें बालू या लकड़ी का बुरादा मिला देना चाहिए।जल-निकासी का उचित प्रबंध हो जिससे कि पौधशाला में अधिक देर तक पानी जमा न हो सके।

- बीज की बोआई घनी नहीं करनी चाहिए।
- पौधशाला की मृदा का उपचार निम्नलिखित विधियों से करना चाहिए: थायरैम या कैप्टॉन 3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से पौधशाला की मिट्टी में मिला देना चाहिए । एक भाग फार्मलीन में पचास भाग पानी मिलाकर बने घोल को पौधशाला की क्यारी में छिड़ककर मृदा को खूब अच्छी तरह भिगोएं तथा पॉलिथीन से ढक कर एक सप्ताह के लिए छोड़ देना चाहिए। यह कार्य बोआई के एक सप्ताह पूर्व करना चाहिए।मृदा का उपचार सौर ऊर्जा द्वारा किया जाता है। इस विधि से गर्मी के दिनों में सफेद पारदर्शी पॉलीथीन की मोटी (लगभग 200 गेज) चादर को मिट्टी की सतह पर बिछाकर लगभग 45-60 दिनों के लिए ढ़क दिया जाता है। ढकने के पूर्व यदि मृदा में नमी की कमी हो, तो हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे सौर ऊर्जा का विकिरण अधिक प्रभावकारी ढंग से हो सके। यह कार्य अप्रैल से जून के मध्य करना चाहिए। इस क्रिया में भूमि में उपस्थित सभी प्रकार के सूक्ष्मजीवों का नाश हो जाता है। साथ ही साथ घास-फूस भी जलकर नष्ट हो जाते हैं।बीज को बोते समय किसी कवकनाशी दवा से उपचारित कर लेना चाहिए। इसके लिए कैप्टॉन, थायरैम 2.5 ग्राम या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से मिलाकर उपचारित करें। पौध जमने के बाद थायरैम या कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पौधशाला की क्यारियों में डालने से पौध गलन की रोकथाम हो जाती है। सिंचाई हल्की और आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

पर्ण चित्ती

पपीते पर विभिन्न प्रकार के पर्ण रोग आते हैं । अनुकूल वातावरण मिलने पर इन रोगों से पपीते के फलों की काफी हानि होती है ।

सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती: सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट) के लक्षण पती व फलों पर दिखायी देते हैं। दिसम्बर-जनवरी के मासों में पतियों पर नियमित से अनियमित आकार के हल्के भूरे रंग के दाग उत्पन्न होते है। दाग का मध्य भाग धूसर होता है। रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती है। प्रारंभ में फलों पर सूक्ष्म आकार के भूरे से काले रंग के दाग बनते हैं जो धीरे-धीरे बढ़कर लगभग 3 मि.मी. व्यास के हो जाते हैं । ये दाग फलों के ऊपरी सतह पर, जो थोड़ा सा उठा हुआ होता है जिसके नीचे के ऊतक फटे होते हैं जिससे फल खराब हो जाता है और फल बाजार के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं। पकते हुए फलों पर रोग के लक्षण काफी स्पष्ट हो जाते हैं।

रोग के कारण: यह रोग सर्कोस्पोरा पपायी नामक कवक से होता है। यह कवक पौधों पर लगे पत्तियों के रोगी स्थानों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग विकास के लिए 20 से 27 डिग्री सेल्सियस तापमान व पत्तियों पर उपस्थित ओस या वर्षा का पानी अनुकूल होता है। रोग का फैलाव कीट व हवा द्वारा होता है।

रोग प्रबंधन: रोगी पौधों के गिरे अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशी दवा जैसे, टाप्सीन एम 0.1 प्रतिशत, मैंकोजेब, 0.2 से 0.25 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव 15-20 दिन के अंतराल पर दुहरा देना चाहिए।

हेल्मिन्थोस्पोरियम पर्ण-चित्ती: इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे जलीय, पीताभ-भूरे रंग के धब्बों के रूप में उत्पन्न होते हैं । पुराने धब्बों का मध्य भाग धूसर होता है। रोग की तीव्रता में पर्णवृंत मुलायम होकर ढीला पड़ जाता है। रोगी पत्तियाँ नीचे गिर जाती है। इस प्रकार के लक्षण हेल्मिन्थोस्पोरियम रोस्ट्रेटम नामक कवक से होते है। इस रोग का शेष प्रबंध सर्कोस्पोरा पर्ण-चित्ती (लीफ स्पॉट) रोग के समान है।

श्यामवर्ण

सामान्य रूप से इस रोग के लक्षण अधपके या पकते हुए फलों पर दिखायी पड़ते हैं। प्रारंभ में छोटे, गोल,जलीय तथा कुछ धंसे हुए धब्बों के रूप में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि पकते हुए फलों की तुड़ाई बराबर

होती रहती है, जिससे पेड़ पर लगे फल पर बने धब्बों का आकार लगभग 2 सें. मी. तक होता है। फल पकने के साथ-साथ इन धब्बों का आकार भी बढ़ता जाता है और कुछ समय बाद ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे इनका आकार अनियमित हो जाता है। धब्बों के किनारे का रंग गहरा होता है और बीच का हिस्सा भूरा या काला होता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर धब्बे के बीच में कवक की बढ़वार हल्की गुलाबी या नारंगी होती है जिसमें कवक के एसरवुलस बने होते है। धीरे-धीरे ये धब्बे फैलकर पूरे फल या उसके अधिकांश भाग पर फैल जाते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोगी फल सड़ने लगते हैं। रोगी फलों में ऐमीनो अम्ल की मात्रा में कमी हो जाती है जिससे पपेन की उपलब्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। फलों का मीठापन भी कम हो जाता है।

श्यामवर्ण रोग (एन्थैकनोज) के लक्षण पर्णवृत एवं तने पर भी दिखायी देते हैं। पेड़ के इन भागों पर भूरे रंग के लम्बे धब्बे बनते हैं। रोगी स्थानों पर कवक एसरवुलस दिखायी पड़ते हैं। रोगी पत्तियाँ गिर कर नष्ट हो जाती हैं।

रोग के कारण: यह रोग कवक कोलेटोट्राइकंम ग्लोओस्पोरीआइडीज के कारण होता है। यह कवक रोगी पेड़ों पर उत्तरजीवी बना रहता है। नम मौसम, रोग विकास के लिए अनुकूल होता है। फल का सड़न ३० डिग्री सेल्सियस तापमान पर अधिक होता है। रोग का फैलाव हवा एवं कीटों द्वारा होता है।

रोग प्रबंध: रोगी पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशी दवा का छिड़काव समयानुसार करना चाहिए। मैंकोजेब, 0.2 प्रतिशत, काबॅन्डाजिम, 0.1 प्रतिशत, डैकोनिल 0.2 प्रतिशत या बोडों मिश्रण (2:2: 50) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।पहला छिड़काव फल लगने के एक मास बाद करना चाहिए तथा उसके बाद 15 से 20 दिन के अंतर पर कुल 5-6 छिड़काव करना चाहिए।